।। ॐ श्री परमात्मने नमः ।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पिछले अनेक अध्यायों में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने ज्ञान का स्वरूप स्पष्ट किया। अध्याय ४/१९ में उन्होंने बताया कि जिस पुरुष द्वारा सम्पूर्णता से आरम्भ किया हुआ नियत कर्म का आचरण क्रमशः उत्थान होते-होते इतना सूक्ष्म हो गया कि कामना और संकल्प का सर्वथा शमन हो गया, उस समय जिसे वह जानना चाहता है उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति हो जाती है, उसी अनुभूति का नाम ज्ञान है। तेरहवें अध्याय में ज्ञान को परिभाषित किया, '**अध्यात्मज्ञान नित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम्।**'- आत्मज्ञान में एकरस स्थिति और तत्त्व के अर्थस्वरूप परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन ज्ञान है। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के भेद को विदित कर लेने के साथ ही ज्ञान है। ज्ञान का अर्थ शास्त्रार्थ नहीं। शास्त्रों को याद कर लेना ही ज्ञान नहीं है। अभ्यास की वह अवस्था ज्ञान है, जहाँ वह तत्त्व विदित होता है। परमात्मा के साक्षात्कार के साथ मिलनेवाली अनुभूति का नाम ज्ञान है, इसके विपरीत सब कुछ अज्ञान है।

इस प्रकार सब कुछ बता लेने पर भी प्रस्तुत अध्याय चौदह में योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन! उन ज्ञानों में भी परम उत्तम ज्ञान को मैं फिर भी तेरे लिए कहूँगा। योगेश्वर उसी की पुनरावृत्ति करने जा रहे हैं; क्योंकि '**शास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय।**' भली प्रकार चिन्तन किया हुआ शास्त्र भी बार-बार देखना चाहिए। इतना ही नहीं, ज्यों-ज्यों आप साधन-पथ पर अग्रसर होंगे, ज्यों-ज्यों उस इष्ट में प्रवेश पाते जायेंगे, त्यों-त्यों ब्रह्म से

नवीन-नवीन अनुभूति मिलेगी। यह जानकारी सद्‌गुरु महापुरुष ही देते हैं इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं फिर भी कहूँगा।

सुरति (स्मृति) ऐसा पटल है, जिस पर संस्कारों का अंकन सदैव होता रहता है। यदि पथिक को इष्ट में प्रवेश दिलानेवाली जानकारी धूमिल पड़ती है, तो उस स्मृति-पटल पर प्रकृति अंकित होने लगती है, जो विनाश का कारण है। इसलिए पूर्तिपर्यन्त साधक को इष्ट-सम्बन्धी जानकारी दुहराते रहना चाहिए। आज स्मृति जीवन्त है; किन्तु अग्रेतर अवस्थाओं में प्रवेश मिलने के साथ यह अवस्था नहीं रह जायेगी। इसीलिए पूज्य महाराज जी कहा करते थे कि ब्रह्मविद्या का चिन्तन रोज करो, एक माला रोज घुमाओ, जो चिन्तन से घुमाई जाती है, बाहर की माला नहीं।

यह तो साधक के लिए है; किन्तु जो वास्तविक सद्‌गुरु होते हैं वे सतत उस पथिक के पीछे लगे रहते हैं। भीतर उसकी आत्मा से जागृत होकर तथा बाहर अपने क्रिया-कलापों से उसे अभिनव परिस्थितियों से अवगत कराते चलते हैं। योगेश्वर श्रीकृष्ण भी महापुरुष थे। अर्जुन शिष्य के स्थान पर है। उसने उनसे सँभालने की प्रार्थना की थी। इसलिए योगेश्वर श्रीकृष्ण का कथन है कि ज्ञानों में भी अति उत्तम ज्ञान को मैं पुनः तेरे लिए कहूँगा।

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।।१।।

अर्जुन! ज्ञानों में भी अति उत्तम ज्ञान परमज्ञान को मैं फिर भी तेरे लिए कहूँगा (जिसे पीछे कह चुके हैं), जिसे जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परमसिद्धि को प्राप्त होते हैं (जिसके बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रहता)।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।।२।।

इस ज्ञान का **'उपाश्रित्य'**- नजदीक से आश्रय लेकर, क्रिया से चलकर, पास पहुँचकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए लोग सृष्टि के आदि में पुनः जन्म नहीं लेते और प्रलयकाल में अर्थात् शरीरान्त होते समय व्याकुल नहीं होते; क्योंकि महापुरुष के शरीर का अन्त तो उसी दिन हो जाता है, जब वह स्वरूप को प्राप्त होता है। उसके बाद उसका शरीर रहने का एक मकान मात्र रह जाता है। पुनर्जन्म का स्थान कहाँ है, जहाँ लोग जन्म लेते हैं? इस पर श्रीकृष्ण कहते हैं-

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।३।।

हे अर्जुन! मेरी 'महद्ब्रह्म' अर्थात् अष्टधा मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है और उसमें मैं चेतनरूपी बीज को स्थापित करता हूँ। उस जड़-चेतन के संयोग से सभी भूतों की उत्पत्ति होती है।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।४।।

कौन्तेय! सब योनियों में जितने शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी **'योनिः'**- गर्भधारण करनेवाली माता आठ भेदोंवाली मूल प्रकृति है और मैं ही बीज का स्थापन करनेवाला पिता हूँ। अन्य कोई न माता है, न पिता। जब तक जड़-चेतन का संयोग रहेगा, जन्म होते रहेंगे, निमित्त तो कोई-न-कोई बनता ही रहेगा। चेतन आत्मा जड़ प्रकृति में क्यों बँध जाती है? इस पर कहते हैं-

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।५।।

महाबाहु अर्जुन! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण ही इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं। किस प्रकार-

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।६।।

निष्पाप अर्जुन! उन तीनों गुणों में प्रकाश करनेवाला निर्विकार सत्त्वगुण तो '**निर्मलत्वात्**'- निर्मल होने के कारण सुख और ज्ञान की आसक्ति से आत्मा को शरीर में बाँधता है। सत्त्वगुण भी बन्धन ही है। अन्तर इतना ही है कि सुख एकमात्र परमात्मा में है और ज्ञान साक्षात्कार का नाम है। सत्त्वगुणी तब तक बँधा है, जब तक परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो जाता।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।।७।।

हे अर्जुन! राग का जीता-जागता स्वरूप रजोगुण है। इसे तू '**कर्मसंगेन**'- कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह जीवात्मा को कर्म और उसके फल की आसक्ति में बाँधता है। वह कर्म में प्रवृत्ति देता है।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।८।।

अर्जुन! समस्त देहधारियों को मोहनेवाले तमोगुण को तू अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान। वह इस आत्मा को प्रमाद अर्थात् व्यर्थ की चेष्टा, आलस्य (कि कल करेंगे) और निद्रा द्वारा बाँधता है। निद्रा का अर्थ यह नहीं कि तमोगुणी अधिक सोता है। शरीर सोता हो ऐसी बात नहीं। '**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।**' जगत् ही रात्रि है। तमोगुणी व्यक्ति इस जगत्‌रूपी निशा में रात-दिन व्यस्त रहता है, प्रकाश स्वरूप की ओर अचेत रहता है। यही तमोगुणी निद्रा है। जो इसमें फँसा है, सोता है। अब तीनों गुणों के बन्धन का सामूहिक स्वरूप बताते हैं-

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत।।९।।

अर्जुन! सत्त्वगुण सुख में लगाता है, शाश्वत परमसुख की धारा में लगाता है, रजोगुण कर्म में प्रवृत्त करता है और तमोगुण ज्ञान को आच्छादित करके प्रमाद में अर्थात् अन्तःकरण की व्यर्थ चेष्टाओं में लगाता है। जब गुण

एक ही स्थान पर एक ही हृदय में हैं, तो अलग-अलग कैसे विभक्त हो जाते हैं? इस पर योगेश्वर श्रीकृष्ण बताते हैं-

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।।१०।।

हे अर्जुन! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण बढ़ता है, वैसे ही सत्त्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है तथा इसी प्रकार रजोगुण और सत्त्वगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है। यह कैसे पहचाना जाय कि कब और कौन-सा गुण कार्य कर रहा है?-

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।११।।

जिस काल में इस शरीर तथा अन्तःकरण और सम्पूर्ण इन्द्रियों में ईश्वरीय प्रकाश और बोधशक्ति उत्पन्न होती है, उस समय ऐसा जानना चाहिए कि सत्त्वगुण विशेष वृद्धि को प्राप्त हुआ है। तथा-

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।१२।।

हे अर्जुन! रजोगुण की विशेष वृद्धि होने पर लोभ, कार्य में प्रवृत्त होने की चेष्टा, कर्मों का आरम्भ, अशान्ति अर्थात् मन की चंचलता, विषय-भोगों की लालसा - यह सब उत्पन्न होते हैं। अब तमोगुण की वृद्धि में क्या होता है?-

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।।१३।।

अर्जुन! तमोगुण के बढ़ने पर '**अप्रकाशः**'-(प्रकाश परमात्मा का द्योतक है) ईश्वरीय प्रकाश की ओर न बढ़ने का स्वभाव, '**कार्यम् कर्म**'- जो करने योग्य प्रक्रिया-विशेष है उसमें अप्रवृत्ति, अन्तःकरण में व्यर्थ की चेष्टाओं का प्रवाह और संसार में मुग्ध करनेवाली प्रवृत्तियाँ - यह सभी उत्पन्न होते हैं। इन गुणों की जानकारी से लाभ क्या है?-

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते।।१४।।

जब यह जीवात्मा सत्त्वगुण की वृद्धिकाल में मृत्यु को प्राप्त होता है, शरीर-त्याग करता है, तब उत्तम कर्म करनेवालों के मलरहित दिव्यलोकों को प्राप्त होता है तथा-

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते।।१५।।

रजोगुण की वृद्धि होने पर मृत्यु को प्राप्त होनेवाला कर्मों की आसक्तिवाले मनुष्यों में जन्म लेता है तथा तमोगुण की वृद्धि में मरा हुआ पुरुष मूढ़ योनियों में जन्म लेता है, जिसमें कीट-पतंगादिपर्यन्त योनियों का विस्तार है। अतः गुणों में भी मनुष्यों को सात्त्विक गुणोंवाला होना चाहिए। प्रकृति का यह बैंक आपके अर्जित गुणों को मृत्यु के उपरान्त भी उन्हें आपको सुरक्षित लौटाता है। अब देखें इसका परिणाम-

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।।१६।।

सात्त्विक कर्म का फल सात्त्विक, निर्मल, सुख, ज्ञान और वैराग्यादि कहा गया है। राजस कर्म का फल दुःख और तामस कर्म का फल अज्ञान है। तथा-

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।।१७।।

सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है (ईश्वरीय अनुभूति का नाम ज्ञान है), ईश्वरीय अनुभूति का प्रवाह होता है। रजोगुण से निःसन्देह लोभ उत्पन्न होता है तथा तमोगुण से प्रमाद, मोह, आलस्य (अज्ञान) ही उत्पन्न होता है। ये उत्पन्न होकर कौन-सी गति देते हैं?-

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।।१८।।

सत्त्वगुण में स्थित हुआ पुरुष **'ऊर्ध्वमूलम्'**- उस मूल परमात्मा की ओर प्रवाहित होता है, निर्मल लोकों में जाता है। रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्यम श्रेणी के मनुष्य होते हैं, जिनके पास न **'सात्त्विकं'**- विवेक-वैराग्य ही होता है और न अधम कीट-पतंग योनियों में जाते हैं बल्कि पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं और निन्दित तमोगुण में प्रवृत्त हुए तामस पुरुष 'अधोगतिः' अर्थात् पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि अधम योनियों को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार तीनों गुण किसी-न-किसी रूप में योनि के ही कारण हैं। जो पुरुष गुणों को पार कर लेते हैं, वे जन्म-बन्धन से छूट जाते हैं और मेरे स्वरूप को प्राप्त होते हैं। इस पर कहते हैं-

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।१९।।

जिस काल में द्रष्टा आत्मा तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्त्ता नहीं देखता और तीनों गुणों से अत्यन्त परे परमतत्त्व को **'वेत्ति'**- विदित कर लेता है, उस समय वह पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है। यह बौद्धिक मान्यता नहीं है कि गुण गुणों में बरतते हैं। साधन करते-करते एक ऐसी अवस्था आती है, जहाँ उस परम से अनुभूति होती है कि गुणों के सिवाय कोई कर्त्ता नहीं दिखता, उस समय पुरुष तीनों गुणों से अतीत हो जाता है। यह कल्पित मान्यता नहीं है। इसी पर आगे कहते हैं-

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।।२०।।

पुरुष इन स्थूल शरीरों की उत्पत्ति के कारणरूप तीनों गुणों से अतीत होकर जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुःखों से विशेष रूप से मुक्त होकर अमृत तत्त्व का पान करता है। इस पर अर्जुन ने प्रश्न किया-

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते।।२१।।

प्रभु! इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है और किस प्रकार के आचरणों वाला होता है तथा मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणों से अतीत होता है?

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।।२२।।

अर्जुन के उपर्युक्त तीनों प्रश्नों का उत्तर देते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कहा - अर्जुन! जो पुरुष सत्त्वगुण के कार्यरूप ईश्वरीय प्रकाश, रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति और तमोगुण के कार्यरूप मोह को न तो प्रवृत्त होने पर बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा ही करता है। तथा-

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।।२३।।

जो इस प्रकार उदासीन के सदृश स्थित हुआ गुणों द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता, गुण गुण में ही बरतते हैं- ऐसा यथार्थतः जानकर उस स्थिति से चलायमान नहीं होता, तभी वह गुणों से अतीत होता है।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।।२४।।

जो निरन्तर स्वयं में अर्थात् आत्मभाव में स्थित है, सुख और दुःख में सम है, मिट्टी-पत्थर और स्वर्ण में भी समान भाववाला है, धैर्यवान् है, जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है, अपनी निन्दा तथा स्तुति में भी समान भाववाला है और-

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।।२५।।

जो मान और अपमान में सम है, मित्र और शत्रु-पक्ष में भी सम है, वह सम्पूर्ण आरम्भों से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

श्लोक बाईस से पचीस तक गुणों से अतीत पुरुष के लक्षण और आचरण बताये गये कि वह चलायमान नहीं होता, गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता, स्थिर रहता है। अब प्रस्तुत है गुणों से अतीत होने की विधि–

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते।।२६।।

जो पुरुष अव्यभिचारिणी भक्ति द्वारा अर्थात् इष्ट के अतिरिक्त अन्य सांसारिक स्मरणों से सर्वथा रहित होकर योग द्वारा अर्थात् उसी नियत कर्म द्वारा मुझे निरन्तर भजता है, वह इन तीनों गुणों का अच्छी प्रकार उल्लंघन करके परब्रह्म के साथ एक होने के योग्य होता है, जिसका नाम कल्प है। ब्रह्म के साथ एकीभाव हो जाना ही वास्तविक कल्प है। अनन्य भाव से नियत कर्म का आचरण किये बिना कोई भी गुणों से अतीत नहीं होता। अन्त में योगेश्वर निर्णय देते हैं–

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।।२७।।

हे अर्जुन! उस अविनाशी ब्रह्म का (जिसके साथ वह कल्प करता है, जिसमें वह गुणातीत एकीभाव से प्रवेश करता है), अमृत का, शाश्वत धर्म का और उस अखण्ड एकरस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ अर्थात् परमात्मस्थित सद्गुरु ही इन सबका आश्रय है। कृष्ण एक योगेश्वर थे। अब यदि आपको अव्यक्त, अविनाशी, ब्रह्म, शाश्वत धर्म, अखण्ड, एकरस आनन्द की आवश्यकता है तो किसी तत्त्वस्थित, अव्यक्तस्थित महापुरुष की शरण लें। उनके द्वारा ही यह सम्भव है।

निष्कर्ष–

इस अध्याय के आरम्भ में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कहा कि, अर्जुन! ज्ञानों में भी अति उत्तम परमज्ञान को मैं फिर भी तेरे लिए कहूँगा, जिसे जानकर

मुनिजन उपासना के द्वारा मेरे स्वरूप को प्राप्त होते हैं फिर सृष्टि के आदि में वे जन्म नहीं लेते; किन्तु शरीर का निधन तो होना ही है। उस समय वे व्यथित नहीं होते। वे वास्तव में शरीर तो उसी दिन त्याग देते हैं, जिस दिन स्वरूप को प्राप्त होते हैं। प्राप्ति जीते-जी होती है, किन्तु शरीर का अन्त होते समय भी वे व्यथित नहीं होते।

प्रकृति से ही उत्पन्न हुए रज, सत्त्व और तम तीनों गुण ही इस जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं। दो गुणों को दबाकर तीसरा गुण बढ़ाया जा सकता है। गुण परिवर्तनशील हैं। प्रकृति, जो अनादि है, नष्ट नहीं होती; बल्कि गुणों का प्रभाव टाला जा सकता है। गुण मन पर प्रभाव डालते हैं। जब सत्त्वगुण की वृद्धि रहती है, तो ईश्वरीय प्रकाश और बोधशक्ति रहती है। रजोगुण रागात्मक है। उस समय कर्म का लोभ रहता है, आसक्ति रहती है और अन्तःकरण में तमोगुण कार्यरूप लेने पर आलस्य-प्रमाद घेर लेता है। सत्त्व की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त पुरुष ऊपर के निर्मल लोकों में जन्म लेते हैं। रजोगुण की वृद्धि में प्राप्त हुआ मनुष्य मानवयोनि में ही लौटकर आता है और तमोगुण की वृद्धिकाल में मनुष्य शरीर त्यागकर (पशु, कीट, पतंग इत्यादि) अधम योनि को प्राप्त होता है। इसलिए मनुष्यों को क्रमशः उन्नत गुण सात्त्विक की ओर बढ़ना चाहिए। वस्तुतः तीनों गुण किसी न किसी योनि के ही कारण हैं। गुण ही आत्मा को शरीर में बाँधते हैं इसलिए गुणों से अतीत होना चाहिए।

वे जिससे मुक्त होते हैं, उसका स्वरूप बताते हुए योगेश्वर ने कहा कि अष्टधा मूल प्रकृति गर्भ को धारण करनेवाली माता है और मैं ही बीजरूप पिता हूँ। अन्य न कोई माता है न पिता। जब तक यह क्रम रहेगा, तब तक चराचर जगत् में निमित रूप से कोई न कोई माता-पिता बनते रहेंगे; किन्तु वस्तुतः प्रकृति ही माता है, मैं ही पिता हूँ।

इस पर अर्जुन ने तीन प्रश्न किये कि गुणातीत पुरुष के क्या लक्षण हैं? क्या आचरण हैं? और किस उपाय से मनुष्य इन तीनों गुणों से अतीत होता

है? इस प्रकार योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गुणातीत पुरुष के लक्षण और आचरण बताये और अन्त में गुणातीत होने का उपाय बताया कि जो पुरुष अव्यभिचारिणी भक्ति और योग के द्वारा निरन्तर मुझे भजता है, वह तीनों गुणों से अतीत हो जाता है। अन्य किसी का चिन्तन न करते हुए निरन्तर इष्ट का चिन्तन करना अव्यभिचारिणी भक्ति है। जो संसार के संयोग-वियोग से सर्वथा रहित है उसी का नाम योग है, उसको कार्यरूप देने की प्रणाली का नाम कर्म है। यज्ञ जिससे सम्पन्न होता है, वह हरकत कर्म है। अव्यभिचारिणी भक्ति द्वारा उस नियत कर्म के आचरण से ही पुरुष तीनों गुणों से अतीत होता है और अतीत होकर ब्रह्म के साथ एकीभाव के लिए, पूर्ण कल्प को प्राप्त होने के लिए योग्य होता है। गुण जिस मन पर प्रभाव डालते हैं, उसके विलय होते ही ब्रह्म के साथ एकीभाव हो जाता है, यही वास्तविक कल्प है। अतः बिना भजन किये कोई गुणों से अतीत नहीं होता।

अन्त में योगेश्वर श्रीकृष्ण निर्णय देते हैं कि वह गुणातीत पुरुष जिस ब्रह्म के साथ एकीभाव में स्थित होता है उस ब्रह्म का, अमृत तत्त्व का, शाश्वत धर्म का और अखण्ड एकरस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ अर्थात् प्रधान कर्त्ता हूँ। अब तो श्रीकृष्ण चले गये, अब वह आश्रय तो चला गया, तब तो बड़े संशय की बात है। वह आश्रय अब कहाँ मिलेगा? लेकिन नहीं, श्रीकृष्ण ने अपना परिचय दिया है कि वे एक योगी थे, स्वरूपस्थ महापुरुष थे। **'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'** अर्जुन ने कहा था - मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण हूँ, मुझे सँभालिए। स्थान-स्थान पर श्रीकृष्ण ने अपना परिचय दिया। स्थितप्रज्ञ महापुरुष के लक्षण बताये और उनसे अपनी तुलना की। अतः स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण एक महात्मा, योगी थे। अब यदि आपको अखण्ड, एकरस आनन्द, शाश्वत धर्म अथवा अमृततत्त्व की आवश्यकता है, तो इन सबकी प्राप्ति के स्रोत एकमात्र सद्‌गुरु हैं। सीधे पुस्तक पढ़कर इसे कोई नहीं पा सकता। जब वही महापुरुष आत्मा से अभिन्न होकर रथी हो जाते हैं, तो शनैः-शनैः अनुरागी को संचालित करते

हुए उसके स्वरूप तक, जिनमें वे स्वयं प्रतिष्ठित हैं, पहुँचा देते हैं। वही एकमात्र माध्यम हैं। इस प्रकार योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अपने को सबका आश्रय बताते हुए इस चौदहवें अध्याय का समापन किया, जिसमें गुणों का विस्तार से वर्णन है। अतः-

ॐतत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे 'गुणत्रयविभागयोगो 'नामचतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद में 'गुणत्रयविभागयोग' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण होता है।

इति श्रीमत्परमहंसपरमानन्दस्य शिष्य स्वामी अड़गड़ानन्दकृते श्रीमद्भगवद्गीतायाः 'यथार्थगीता' भाष्ये 'गुणत्रयविभागयोगो' नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

।।हरिः ॐ तत् सत्।।